TEXT DARK AND LIGHT

UNIVERSAL LIBRARY

OU_182322

UNIVERSAL LIBRARY

OUP—23—4-4-69—5,000.

OSMANIA UNIVERSITY LIBRARY

Call No. H81 S53K Accession No. H22297

Author शर्मा, पाण्डेय बेचन 'उग्र'

Title कंचनघट . 1951.

This book should be returned on or before the date last marked below.

कंचन-घट

(कविता-संग्रह)

लेखकः—
श्री पाण्डेय बेचन शर्मा 'उग्र'

विनोद पुस्तक मन्दिर
— आगरा —

प्रथमबार] १९५१ [मूल्य १॥)

प्रकाशक—
विनोद पुस्तक मन्दिर,
हास्पिटल रोड, आगरा।

मुद्रक—
रसीद प्रिंटिंग प्रेस,
मदन मोहन दरवाजा, आगरा।

विषय-सूची

		पृष्ठ
१—	कञ्चन-घट	१
२—	राष्ट्रीय गान (भैरवी) ...	३
३—	प्यारी पताका	४
४—	दीन	५
५—	दीपा	६
६—	अब जाग !	७
७—	अ-संबल गान	९
८—	व्यापारी	१२
९—	पट घूंघट का टार	१९
१०—	दानवता !	२१
११—	काँटों का ताज	३३
१२—	प्रकाश	३९
१३—	पारिजातों का बलिदान !	४०
१४—	भारत-भ्रमर-गीत	४५
१५—	हिन्दुस्तान....!	४९
१६—	तृष्णा विशाला	५०
१७—	साध	५३
१८—	जीव से	५५
१९—	मेघराग	५७
२०—	मृत्यु-गीत	५९
२१—	पद-चिन्ह	६०
२२—	युग-पुरुष	६२
२३—	दीनबन्धु-लेनिन	६५
२४—	लड़के लड़के कहलाओगे	६६

२५-- असहयोग करो उससे सभी ... ६७
२६- बन्दीग्रह ... ६९
२७- काल-कोठरी ७०
२८- दो कविताएँ ७१
२९-- अकाली चले ! ७२
३०-- गौराङ्ग ७३
३१-- सुख का पता ७४
३२- चमकीली चर्चाएँ ७५
३३- सन् ३७ .! ७६
३४- साहित्य ८०
३५- वैषम्य ८१
३६- पाप ८२
३७-- विप्लव-गान ८३
३८- श्मशान ... ८५
३९-- श्मशान ! ८८
४०- श्मशान ९०
४१- लौट आ....! ९१
४२- देखो तो ९३
४३- बरफी त्तियाँ ९५
४४- चन्द्रोदय...! ९७
४५-- आया वसन्त ! आयी होली ! ९८

———

१—कँचन घट

मेरा पागल पन हाय निपट
लेकर सूना माटी का घट
अटपट पग झपट चली पनघट
मेरा प्यासा मन हाय निपट !

सखियों ने कहा—है अँधेरा
घनघोर घटाओं ने घेरा
कच्ची माटी का घर तेरा
मग है बटमारों का जमघट

मैं जीवन से विरहित तरुणी
सखियों की सीख मैंने न सुनी
(बाधा से अटकते नहीं धुनी)
जमुनातट ऊपर चली सर पट

चंचला चमकने लगी विकट
बरसे घिर घिर बादल के ठट
मैं रपट गिरी टूटा रे घट
अंकित कलंकमय पंकित पट
मैं दूर- दूर रे यमुना तट

जब व्याकुल हो मन घबड़ाया
तब तू अबलों का बल आया
नख शिख प्रकाश रवि-सा छाया
अमृत जीवन-रस भर लाया

बटमार जान बोली मैं—हट !
पर आँख खोल देखूँ तो-नट !
तेरे मस्तक पर मोर मुकुट—
मेरे मस्तक पर कंचन-घट !

२–राष्ट्रीय गान (भैरवी)

विमल भूमि जै ,
सजल , सफल , सदल , सबल , अमल , भूमि जै ।
विमल भूमि जै ।

प्रकृति देवि अंक बसत, जल-निधि नित पद-परसद ,
हिमगिरि वर मुकुट लसत–धवल भूमि जै ॥ विमल० ॥
जै स-भेद चारु वेद , जै पुरान—वन अभेद

दर्शन, स्मृति युत अ खेद—नवल भूमि जै ॥ विमल० ॥
सिंध, गंग, यमुन सु-जल अगनित नित फलत सुफल,
सिक्ख. राजपत सु-दल—पवल भूमि जै ॥ विमल० ॥
सत्याग्रहि- जननि भूमि , धर्माग्रहि करनि भूमि

अगजग सुख भरनि भूमि—परल भूमि जै ॥ विमल० ॥
राम की पवित्र भूमि , श्याम की पवित्र भूमि ,

गौतम सु-चरित्र भूमि—समल भूमि जै ॥ विमल० ॥
जै अशोक अकबर घर, जै प्रताप , शिव सुख घर ,
दरशन तव चहत अमर—अचल भूमि जै ॥
विमल भूमि जै ।

—०—

३—प्यारी पताका

पताका—प्यारी देश की !
बलिहारी हम सब हैं तेरे लाल, हरित सित वेश की ।
अखिल-संसार में अभिनन्दिता हो ,
त्रिदिव×में भी त्रिदश + दल वन्दिता हो ।
बड़ा सम्मान पा आनन्दिता हो ,
मुख श्री तव , न पर-दल-मर्दिता हो ।
बलिहारी हम सब हैं तेरे लाल, हरित, सित वेश की ।
पताका—प्यारी देश की !
करे अपमान तेरा कौन खल है ?
असम्मानित तुझे करना सहल है ?
जहाँ तक हम सबों का शुभ बल है,
तहाँ तक तव प्रतिष्ठा भी अचल है !
बलिहारी हम सब हैं तेरे लाल, हरित सित, वेश की ।
पताका—प्यारी देश की !
तुझे सर आँख से हम आदरेंगे ,
भुवन में भव्य यश तेरा भरेंगे ।
दिवस निशि ध्यान तव मन में धरेंगे ,
अमर कर मान तेरा तब मरेंगे
बलिहारी हम सब हैं तेरे लाल, हरित सित वेश की ।
पताका—प्यारी देश की !

.....

× स्वर्ग + देवता

४–दान

महाराज, युवराज सरदार, ज़रदार
जूआ खेलने के लिए जुटे राज-दरबार।
सोनापुर राज की वसुन्धरा थी रत्न मयी
और थी खेलाड़ियों को कौड़ियों की दरकार!
किन्तु उस देश में, वराटिका मिली न एक,
खोज-खोज हारे–दास-दासी, दस-दस बार...
भाग्य की परीक्षा की प्रतीक्षा में सभी थे जब
भिक्षा मागने को पहुँचा मैं तभी राज-द्वार--
--मेरे पात्र में थीं चन्द कौड़ियाँ जिन्हें विलोक
चन्द कौड़ियों पे टूटे सरदार, ज़रदार....
चन्द कौड़ियों को ललचाने हीरा-मणि आये
चन्द कौड़ियों के महाराज थे तलबगार!
मैंने कहा, ज्ञान से तमक, तान मस्तक को
--"भाग्यवानो! दान दूँगा,–माँगो हाथ को पसार!"
भीख लेके जीते वे, मैं दान देके हार गया,
हार के गया मैं जीत! जीतके गये वे हार!!

.....

५–दीपा

मैं माटी हूं मैं माटी
लघु-लघु कण-कण किरकिर कठोर
निष्क्रिय, नीरवता पोर पोर
पाटी जीवन परिपाटी....!
जब कुम्हार से हुई भेंट
तब चक्र-दण्ड रस में लपेट
मैं गयी आग से चाटी !
तप से अनेक कण बने एक
पा रूप और नव नाम नेक
मैं फिर थिर हुई–उचाटी !
तप से महान कुछ मिले दान
मैं दिव्य स्नेह गुण ज्योति खान
यद्यपि हूं नन्हीं– चाटी !
मेरे तप से पाकर प्रकाश
मन्दिर , मसजिद , घर आस-पास
जगमग गिरि-गह्वर घाटी !

.....

६–अब जाग !

कह गया कल प्रात
कोई,– 'मोह है दुख-मूल सखि
सब वासनाएँ भूल सखि !
अस्तित्व केवल बात।

"सकल स्वप्निल साज
धूमिल चूनरी के तार मे
मिटते सतत संसार मे
ज्यों मेघ के गजराज

अज्ञता की आग....
तेरे मृघर . वर को चाट के
सब किये बारह बाट के
अयि हेम-मयि, अब जाग !

प्रबल शुम्भ निशम्भ
तेरे पूत पतिको बाँधते ,
निज अधम साधन साधते,
उठ, तोड़ शठ मद-कुम्भ !

"यह मधुर-मुसुकान
तेरी कुकुल का लघु हारा है,
फिर चयन या बातास है
(आरम्भ में अवसाम !)

इसलिए द्रग खोल !
आंगन देख तेरा आज, क्या
कुछ सज रहा है साज क्या
तू मौन····? निज बल तोल !

अब न अबला जान
निश्चय प्रबलता की खानि, तू
भव जननि है कल्याणि ! तू
विधि की सुकृति, रुचिमान !

पुरुष है बेहोश
तू कापुरुष को झकझोर दे
तप, त्याग में तन बोर दे,
प्रति हृदय में भर जोश !

.....

अ--संबलगान

उपदेशक—

तेरी कंथा के कोने में,
कुछ संबल है, या संशय है-
अरे पार्थक ! होने में ?
दूर देश तुझको जाना है,
पथ का ध्रुव दुख-सुख पाना है,
समझ सावधानी से इसको,
विदित विश्व यह बेगाना है;
अरे, गुनगुना इतना गा ना,
पड़ना है आगे रोने में;
—तेरी कंथा के कोने मे।
यदि कुछ हो न, ठहरता जा ना,
कंथा अपनी भरता जा ना
करम दिखा इन बाजारों में,
कुछ हरता कुछ धरता जा ना,
करता जा खिलवाड़-अमरता
पड़ नश्वरता के टोने में;
—तेरी कंथा के कोने में।
बीहड़ बाट, हाट से आगे,
जा मत, मुसका मत भय त्यागे,

गिरि, गह्वर' नद, निर्झर-झर है,
पछतावेगा अंत अभागे,
खो देगा अपने को- पागल !-
होती हँसी यहाँ खोने मे.
-तेरी कंथा के कोने में।

(२)

--राही

खो जाने ही का तो डर है,
इसीलिये संबल संचय में-
संशय है, कुछ कोर-कसर है।
इसीलिये यह कंथा खाली,-
-मलिन मुखी, गलिता. अति काली-
लाद पीठ पर नाच नाचता,
गाता आसावरी निराली,
इसीलिये यह गाल बजाता,
इसीलिये यह सूना स्वर है,
इसीलिये संबल संचय में-
संशय है, कुछ कोर कसर है।
दूर देश से मैं आता हूं,
सच है, दूर देश जाता हूं,

किन्तु जिसे पाता हूं पथ में,
खोने ही वाला पाता हूं।
सुना–"घाटे मिट गये हजारों,
वह घटिया घाटों का घर है।"
इसीलिये संबल संचय मे–
संशय है, कुछ कोर कसर है।
वह गिरिवर, वह नदी मनोहर,
वक्र फलाकर, कल-कल गाकर,
जाते दूर गंभीर नील दिशि,
संबल की यह भूल भुलाकर,
इसीलिये इन बाज़ारों की–
नहीं मुझे अब खाक खबर है,
इसीलिये संबल संचय में—
संशय है, कुछ कोर कसर है।
–खो जाने ही का तो डर है।

व्यापारी

(काव्य कहानी)

मैं छोटा सा था व्यापारी .
हलका अपना खेवा था ,
मैं माटी लेकर निकला था !
मिसरी थी ना मेवा था ।

×

और, वहाँ बाजार लगा था !
और वहाँ बाजार लगा था—
मन मोहन का मेला था ,
रतन, जवाहर, हीरा, मोती ,
पूरा रेला-पेला था !
गुल बुलबुल बहार बिकते थे,
रंग बंधा अलबेला था,
मैं माटी लेकर निकला था,
सबमें एक- अकेला था !

×

क्रय-विक्रय विस्मय-मय विनिमय !
चमक दमक की चाह सभी को
मेरा सौदा मैला था ,
नजर नहीं उस पर टिकती थी-
गो, चरणों मे फैला था !

टुक-टुक कर रूप रंग पर—
मोहकता के अंग-अंग पर—
हाव-भाव का ज़ोर—शोर था
घर घर, दर दर, नर नर, सर सर

×

मुझ पर नहीं निगाह किसीकी····
आह ! पड़े जब एक एक पर
जाते, नज़र अनेक—
अपनी अपनी रुचि की गठरी
बाँधे, सहित विवेक !
धनिक वणिक यह गये, श्रमिक—
वह, उधर चले विद्वान ;
नृप यह गये ! कुँवर वह जाते,
बाँध रहे सामान !!
असफलता से मैं घबराया····

×

भर आया लहरीला मानस
—'हे मेरे भगवान !'
ढीले हुए तार आँसू के,
चलते गीले- गान

कहने लगे कहानी अपनी
जिसमें थी असफलता घोर
बड़ी वेदना-मय--नगण्यता
उस बिखरी माटी की ओर
मैं माटी लेकर निकला था !

×

वह आये भगवान !
जब पूरब का हुआ उजाला
पश्चिम के घर, फैल,
अंधकार से आँखमिचौनी
लगा खेलने--- मैल !
तब, उस ओर, दिव्य दल आया !
विधि हरि हर विख्यात
--अपनी अपनी शक्ति संवारे--
आये करते बात--
"भक्त के वश में हैं हमलोग !
नहीं है मुक्त अमरता आह !!"

×

मैं वि-भक्त-सा रहा घूरता
भक्त मण्डली हुई अधीर,

पद अनुरक्त दौड़ते आये
सस्त-सुस्त कहने गंभीर—
"ए माटीवाले ! फिर फिर क्यो
यहो व्यर्थ फैलाता है ?
क्यो आँखो मे धूल झोंकने
इस 'बाजार' में आता है ?
रहते हैं भगवान यहाँ , सुन !
कर देवेंगे तेरा नाश—
वह सहस्त्र कर, वह सहस्त्र पद,
वह सहस्त्र-मन बुध्दि-प्रकाश !"

×

स-भय हुई मेरी निर्भयता ···
गले लपटकर लगी उदासी
करने हाहाकार— अपार ,
मानो चिपक गया छाती से ,
वह , मैला , माटी का भार !
"भाग....भाग !" मैं लगा सोचने-
"जीवन हुआ अभाग-अ भाग !
राग-रागके राग अलापे
फलमें सुना— विराग-विराग !

×

"भाग....भाग !" मैं लगा सोचने-
"जंगसे भाग, भाग, जग-मगसे
डगमग-पगसे ? क्या परवाह !
चलते— छोड़ ! मोह माटी का
इसकी कहाँ किसीको चाह !
इसे पड़ी रहने दे योंही,
जब यह जीवन पावेगी
पुलक पिघल घुल-मिलकर
खुद ही महा-मही हो जावेगी...."

×

तब तुम एकाएक ! पधारे....
विकल भाव से, कल स्वभाव से,
तुम कुछ ढूँढ चले उस ओर
जिधर, जगमगाती मणियाँ थीं
सन्ध्या की बतलाती— भोर।
देख रहा था मैं, दुत्कारे गये,
पड़ी फटकार बहुत !
था अचरज में, चाह रहे तुम
क्या ऐसा— अलभ्य, अद्भुत !
तब तक तुम मेरे ढिग आये....

मैंने देखा, थे तुम सुन्दर!
केश तुम्हारे सुन्दर तर
बिखरे संवरे थिरक रहे थे
लहराकर, भ्रू मस्तक पर।
जीवनमय थे नैन-निराले
प्राण-स्पर्श कर, मधु-मय बोल
क्या जाने क्यों समझ गया मैं
— 'तुम लोगे यह माटी मोल!"

×

मेरी माटी के प्रिय गाहक
बोले- "मैं वह शिल्पकार हूं
जो ऐसी माटी लेकर
सम्पक-जीवन इसमें देकर,
मूर्ति सजाता नव, सुन्दर!
मैं रचता नर, नर-पति, पशुपति,
श्री, श्रीपति, सब एक समान,
मेरी माया के पुतले हैं-
धार्मिक वाणिक अ पठित विद्वान,
तुम यह माटी मुझको सौंप दो!"

×

अञ्जलि भर-भर, सिहर सिहरकर.
जब मैं उनके अञ्जल मे-
सुरभित-पट के, धूलि सजाने
लगा- अश्रु के काजल मे.
तब. वह ऐसे लगे देखने
उमर उमर कर मेरी ओर-
मानो मैं सर्वस्व सौपता था
उनको— आनन्द विभोर !

×

मेरी माटी के प्रिय गाहक !
मेरा भार उतार, मलिन तर
मेरे तन को उज्जवल कर,
दे सुवर्ण- सच्चा मनमन-भर
रज को रजत विनिन्दक कर-
उन्नत कर मम मस्तक वर--
अन्तर्धान हुए सत्वर !

....

पट घूंघट का टार

(१)

कनक कलश जीवन भर जगमग
रंग-रंग मणिडत-मणि नग-नग
झूम चलीं सखियाँ सब-डगमग-
कर सुन्दर शृङ्गार।

(२)

पलक पाँवड़े डाल नवेली
बैठी हर यक द्वार अकेली
सोनमुखी सिर सजे चमेली—
सज्जन रसिक सुकुमार

(३)

आवेंगे पिय रात गये कुछ
(जब उडगण सरसात नये कुछ....)
वसन सजा निज गान नये कुछ-
पहन सुमन वन-हार

(४)

मैं मदमाती हूं अलसाती
स्नेह बिना दीपक नहिं बाती
कोई आवे मैं तो जाती—
सोने पाँव पसार

(५)

पिछली रात स्वप्न में जागी
देखा सारी सांखियां भागीं
आकर कहने लगीं, अभागी--
अब तो आँख उघार

(६)

किन्तु भरी जोबन की डाली
मँह-मँह मतवाली मद-प्याली
कुछ भी सँभल न रुकी सँभाली
लौटीं सब लाचार

(७)

मैं सोयी फिर-- हाय अभागी
कुछ कोलाहल सुनकर जागी
रागी मन देखूँ अनुरागी
मेरे पिय साकार

(८)

प्रेम परस से सरस जगाते
बरबस हँस हँस कर गले लगाते
चूम नैन मेरे अलसाते
पट घूँघट का टार !

.....

दानवता !

(क)

"मेदनी, मलिना बनी क्यों आज तू ?
किस लिए है दीर्घ साँसें ले रही ?
क्यों न ऋतु अनुरूप सजती साज तू ?
कष्ट क्यों सहृदय जनों को दे रही ?"

(ख)

"देख तो, ऋतुराज आये हैं यहाँ,
और, तू कुछ भी न स्वागत कर रही !
ध्यान तूने है लगा रक्खा कहाँ ?
बोल भी, किस सोच में है मर रही ?"

(३)

"शुष्क क्यों हैं ये सभी विटपी खड़े ?
और लतिकाएँ पड़ीं क्यों सूख कर ?
दल (१), सभी हैं क्यों बिना 'पतझड़' झड़े ?
क्या हुए तरु गण सखे आकाश-चरण ?"

(४)

"और माँ ! यह लालिमा कैसी यहाँ ?
किस तरह अंचल रँगा तेरा गया ?
देख तो, ये सब पड़े हैं क्या वहाँ ?
देखकर जिनको उमड़ आती दया !"

(५)

"अयि धरे ! ये 'कर' कटे किसके धरे ?
और किनके 'मुण्ड' ये रज में सने ?
'रुण्ड' किनके ? जानु ये किनकी ? अरे !
कुण्ड ये हैं रक्त के किसके बने ?"

× × ×

(६)

प्रश्न ऐसे हो रहे थे जिस समय
उस समय निज-देश की लख दुर्दशा !
काँप उठते थे सभी होकर सभय
क्योंकि वसुधा हो गयी थी कर्कशा !

(७)

रक्त की उसको भयंकर प्यास थी !
'मुण्ड-मयि होना उसे स्वीकार था !
निश्चरी-सी कर रही वह हास थी !
प्राण-पति उसका बना अविचार था !

(८)

राज-अंगरेजी यहाँ तब भी रहा,
किन्तु भय से गौर-गण काले रहे
और तब भी हिन्द 'कालों'-मय रहा !
किन्तु काले काल के पाले रहे !!

(ख)

नर एक, दूसरे का जब संहारक था,
या (खुश होने पर) बना त्रणाकारक था
सन-सत्तावन-उस समय रहा वाचक-वर !
गोरी सत्ता बन दीन गयी थी जब मर !

(२)

तब बृटिश सिंह का आसन डोल गया था !
फौजों पर का सारा 'कण्ट्रोल' गया था !
सब जगह सिपाही बने सुमत वाले थे !
पर गोरे गण को घोर कुमत वाले थे

(३)

मेरठ से ज्वालामुखी भयंकर फूटी,
जिससे सत्ता-कम्पनी एक दम टूटी !
दिल्ली गोरों से हुई सर्वथा खाली—
थी उसमें केवल 'बृटिश,-रक्त की लाली !

(४)

फिर शाह-बहादुर बादशाह बन बैठे
घूमने सिपाही × लगे शान में ऐंठे !
× × ×

काशी प्रयाग में भी तब शान्ति नहीं थी,
इस कानपूर में सरिता-रक्त बही थी !

(५)

बिगड़े सिपाहियों ने 'गोरे मारे थे !
औरतों और बच्चे तक संहार थे !
मारे मारे सारे अंगरेज़ फिरे थे !
आकस्मिक-संकट से सब खूब घिरे थे !

(६)

बीवियाँ (३) बेबियों (४) को निज हृदय लगाये,
थीं शरण माँगती फिरतीं कर फैलाये !
उस समय यहाँ ऐसे अनेक काले थे,
जिनके घर में गोरे डेरा डाले थे !

(७)

माँ बाप सदृश हमने सहायता करके,
सुख दान दिये गोरों को, सब दुख हरके।
उस समय न जो उनके रक्षक हम होते,
निश्चय ही सब श्वेताँग प्राण निज खोते।

(८)

'कम्पनी-राज,' सर्वथा हवा हो जाता,
'लण्डन' का खण्डन होता सारा नाता!
पर नहीं, आये निज प्राण-दान देने हैं!
निज शरणागत की रक्षा कर लेते हैं।

(ग)

जब कुछ दिन में अंगरेजों के दिन फिरे-
हिन्दवासियों की सहायता प्राप्त कर।
तब गोरे भी 'दानव,' बन करके निरे—
बदला लेने लगे क्रोध पर्याप्त कर!

(२)

जिन जिन गाँवों में सिपाहियों का पता-
पाते थे जाते थे वे दौड़े वहीं।
ग्रामवासियों के प्रिय जीवन की लता!
भस्मसात बे-किये लौटते थे नहीं!

(३)

इसी तरह प्रत्येक 'श्वेत तन' के लिए,
अगणित 'काले' काल गाल डाले गये!
कष्ट उन्हें बहु सोच सोच करके दिये,
जिनके द्वारा विपद समय पाले गये!

(४)

एक , दो नहीं , कितने ही शत ग्राम-वर—
'हा हो, कर जल उठे तोप के कोप से !
क्षण क्षण पर वसुधाञ्चल मे बहु-रक्त भर
हँसते थे अँगरेज़ भरे आरोष (५) से !

(५)

कितने. जिनके भाग्य धूल में थे मिले.
रज में मिलते गेह देख रोने लगे !
कितने, जिनके दाँत बुढ़ापे से हिले,
हाथ जवानों के जीवन खोने लगे !!

(६)

पथ के दोनों ओर विविध विटपी खड़े,
निज कर में गुण मुक्त (६) नरों के शव लिये !
कहते थे मानो वे दुःखित हो बड़े,
"दानव-कर मानव को क्यों केशव ! दिये ?"

(७)

सरिताओं में बहु-शव बन अद्भुत तरी,
काक-मण्डली-युत थे बहते जा रहे !
"मरने पर भी 'काले' हो उर पर हरी !"
मानो सबके सब थे कहने जा रहे !!

(८)

शव खाने के समय काक-गण बोलकर,
श्वेत मछलियों से मानो कहते यही—
'रख लेंगे इनको उर में मुँह खोलकर,
पर श्वेताँगों के कर में देंगे नहीं !

× × ×

(९)

वाचक ! जब यह लीला दानवता - मयी,
भरत-भूमि पर वितरित करती थी व्यथा !
उसी समय इतिहासों में लेखी गयी,
नगर लखनऊ की आगे सुनिये कथा !

(घ)

यही है तोप वर - वाचक महोदय !
इसी से नष्ट होता विश्व का नय !
कलेजा लौह से इसका बना है !
सुना है कल की यह अंगना है !

(२)

सभी से है बड़ी उत्पात में यह !
सदा रहती लहू की घात में यह !
उगलती आग है हर बात में यह !
ढली है एक दम इस्पात में यह !

(३)

अगाड़ी फौज के गाड़ी स्वरूपा,
सदा रहती यही डायन अनूपा !
जहाँ चलती तुपक - है प्राण जाते ;
विकट-तर दुर्ग भी मस्तक नवाते !

(४)

उसे अब छोड़कर करिये इधर सर।
यही है लखनऊ का बाग - केशर।
इधर घुड़ दौड़ का मैदान भारी,—
विलोकें, फिर सुनें बातें हमारी।

(५)

इसी घुड़ दौड़ के ही पास था घर—
बड़ा भारी, जिसे निज हाथ में कर—
सिपाही थे डटे शस्त्रास्त्र लेकर,
हराने शत्रु को निज प्राण देकर !

(६)

बिना कर में किये यह घर भयंकर,
न अंगरेजों को मिलता बाग - केशर।
अतः सिख युक्त गोरी फौज लेकर,
गया अंगरेज सेनानी (७) वहाँ पर।

(७)

सिपाही - पर - असाधारण बली थे,
बिलोके सैकड़ों समरस्थली थे !
न था खेलवाड़ उनको हार देना,
दनादन गोलियों से मार देना !

(८)

लड़े दो बार सिख-अंगरेज़ मिलकर,
न, पर, छोड़ी सिपाही भूमि तिलभर !
मरे कितने समर में वीर - गोरे !
टूटे कितने सिखों के प्राण डोरे !

(९)

गयी तोपें भयंकर तब मंगायी,
कि जिनकी बात है ऊपर बतायी !
हुए उनसे सिपाही वीर जर्जर,
जलाने वे लगीं बहु - अग्नि भर - भर !

(१०)

जब सिपाहियों के दल का बल घट गया,
तब उनके ही सिक्ख-बन्धु आगे बढ़े !
फिर क्या ? 'दानवता' से भू - तल पट गया,
कितने ही तलवार - धार ऊपर चढ़े !!

(२)

पड़ा वहाँ पर जो सिक्खों की दृष्टि मे,
वही उतारा गया घाट तलवार के !
बचा न कोई संगीनों की दृष्टि में,
मरे करों से सब ही हत्याचार के !

(३)

सना रक्त में और कुण्ड - मणादि-मय,
वह घर आया अंगरेजों के हाथ मे !
पर पाठक ! गोरे फर सकते थे न जय.
सिक्ख वीर होते न लगे जो साथ में !

(४)

अब आगे की आप सुनें करुणा - कथा,
मृतकों में था एक अध - मरा - नर पड़ा।
बहु-व्रण उसको देते थे अतिशय व्यथा,
किन्तु रहा वह मौन, किये निज जी कड़ा।

(५)

पर, हतभागे पर कुदृष्टि पड़ ही गयी,
किसी क्रूर - गोरे की एकाएक—हा !
नष्ट-प्राय - जीवन - नौका लड़ ही गयी,
खल - समुद्र में काल - हिम शिला देख हा !

(६)

उसे पकड़ कर गोरे लाये फौज मे.
अधिकारी गण को दिखलाने के लिये !
किन्तु वहाँ पर दानवता की मौज में,
कष्ट विविध अंगरेजों ने उसको दिये !

(७)

बहुतों ने पकड़े उसके दोनों चरण ,
और चीर कर दो कर देने को चले !
किन्तु बज्र-सा था वह तन-परिपूर्ण व्रण .
अंग सभी उसके थे लोहे के ढले !

(८)

तब अनेक, कर मे लेकर संगीन को ,
लगे मारने मुख पर उस असहाय के !
छिन्न बदन कर डाला दुर्बल, दीन को ,
फिर भी निकले प्राण नहीं मृत-प्राण के !

(९)

फिर ? फिर क्या तब उसको सब लेकर चले.
ज़रा दूर प्रज्वलित अग्नि की राशि-तट !!
और वहां पर उसका मुंह झुलसा भले,
प्राण ले लिये बह्नि-करों मे डाल चट !

(१०)

'मानवता' भी भागी लेकर प्राण तब,
'दानवता' की ऐसी लीला देखकर !
स्तब्ध रह गये वे लेखक-इतिहास सब,
व्यग्र 'उग्र' हो गये नेत्र में अश्रु भर !※

※ देखिये *Martins Indian Empire Vol II P. 478* या गदर का इतिहास दू० भा० पृ० १२४२ (१) पत्ते (२) पत्ता
* सन् १८५७ (×) अवध के विद्रोही सिपाही से मतलब है।
(३) गोरी मेमें। (४) बच्चे। (५) अहंकार। (६) रस्सी में बंधे हुए। (७) सेनापति आउट्रम।

काँटों का ताज

कोई दो हजार साल पहले का कहूं हाल
रोमनों का राज था यहूदियों के देश में ।
मारे 'इसरायली' तबाह, बेगुनाह
आह ! दुख की कराह में उबलते थे.
क्लेश में ।
रोमन थे आततायी या कसाई कर्मवाले
काटते थे डाटते थे रोब से यहूदियों को—
मलके रिआया के गुरबों या बहबूदियों को—
लटते थे, पीटते थे. करते थे अपमान
देश. देवता का, दिव्य सभ्यता का !
पासबान बने, बल—तने वे अकड़ूँ-बाज
करते सितम थे रहम के लिवास मे ।
अभिमान पुतलेवे. मद-पिये-पागल
आग लिये नाचते-यहूदियों के सर पर !
मन्दिर का, देव, देश, सभ्यता का अपमान—
ताने तलवार था विदेशी दर-दर पर—
और घर-घर. परबस हो यहूदी सब
मर-मर कर, परमेश्वर से कहते थे—
"दया करो, दीन बन्धु ! बख्श दो जहाँपनाह !
हमें एक नेता दो !

हृदय-विजेता, दृढ़-चेता ऐसा
लेता, जो हमें उबार महामझधार से
उस अंधकार से !
और एक नेता आया....
हृदय-विजेता, दृढ़-चेता
विश्व नाटक का महा अभिनेता आया !
साथ में किताब एक और नयी तवारीख
एक नयी सभ्यता नया विधान लेता
आया !
जीजस या ईसा, तेजरथ का लोहार-पुत्र-
यूसुफ़ कुमार मरियम का परम-पुन्य
सत्य का संदेश लिये आया उस लोक से
लोक, उसे पहचान, सनमान, बोल उठे-
"परमेश्वर का प्यारा, बेटा महा प्रभु का !"
किन्तु, सुनकर अफवाह, शाह यहूदिया-
रोमनों के हाथ का खिलौना-देशी राजा एक,
सुल्नी हिरोद घबराया-आह ! आया कौन ?
कौन आया ? कौन आया ? जनता में जोश वाला ?
कौन कहता है ?-राजा आया है यहूदियो का....
ऐसा राजा जो कि सारी दुनियाँ का बादशाह !

ऐसा राजा, जिसके न राज है, न ताज हैं-
—किन्तु देश देश दिल-दिल पर राज है
ऐसा राजा, जिसकी न सेना है, न सिपाह है !
मार-पीट, दख देना बन्द करता है जो कि,
कहता है- 'हथियार रखना गुनाह है"....
ऐसा राजा, जो कि दया प्रेम के लिये प्रसिद्ध
दुनिया के रोगी, पापियों का जो मसीहा है !
अन्धे को देता है आंख डाले जान मुर्दों में,
देता है संदेश आत्मा का, परमात्मा का
चर्चा चलाता है नजात और मुक्ति का !
काट मोह माया देता, कोढ़ियों को काया देता-
ऐसा राजा जो दुखियों का महाराज है !
ईसा ने कहा कि-"धन्य वे हैं जो न मगरूर,
क्योंकि, आसमान है उन्हीं का-है जमीन भी।"
ईसा ने कहा कि—"धन्य आदमी जो पछताये-
मिलेगी उसे नजात और शान्ति !
ईसा ने कहा कि-"धन्य वे हैं जो सताए जायं
रास्ती के रास्ते में।
क्योंकि, उन्हीं को मिलेगा रोज आसमान का।
और देश का स्व-राज....।"
कोई दो हज़ार साल, पहले का कहूँ हाल।
रोमनों का राज था यहूदियों के देश में

मन्दिर का, सभ्यता का, सबका था अपमान !
ताने तलवार था विदेशी वीर वेश मे.... ।
ताले से लगे थे मुँह-मुँह घर-घर पर ।
लोग आह भरते थे— मरते थे दास बने—
बेचने थे आत्मा खरीदने को बेड़ियाँ ।
लड़ने पड़ोसी विदेशियों के मित्र बने
दुखित पतित यहूदिया के निवासी थे ।
तब यह रहम दिल नेता, मुक्तिदाता आया—
दीन, दुर्बल-तन, तपस्वी महात्मा—
जिसे देख देशी राजा पागल हुए हिरोद ।
हिल गई पापी परदेशियों की आत्मा,
जिसे देख दाम के गुलाम धनवान छटे....!
काँप उठे ढोंगी, मठधारी जो दुरात्मा,
घबराये-देख सत्यवान उस नेता को !
राजा डरा राज को-विदेशी साम्राज्य ही को !
मुफ्ती-महन्त डरा शादी और मठ को,
सबने कहा कि— 'यह नेता नहीं पागल है ।
बागी रोमनों का !--अनुरागी निज राग का....
यह बलवाई ना खुदा हो, खुदा जानता है....!
"कोई किस तौर पकड़े जो इस शठ को—

चांदी के मिलेंगे उसे टुकड़े इनाम
तो—
कौन उसे पकड़ेगा ? "किन्तु सारी यहूदिया
और सारे रोमनों में,
एक न मिला तो हाथ रखता महात्मा
पर।
और जो मिला तो वह हाथ था मसीहा का !
शिष्य या मुरीद नाम—जुडा इस्केरियत !!
मुंह दिखला के यहूदा ने मारा पत्थर—
गुरु को कराया गिरफ्तार चुप-चाप चेले ने।
ईसा हज़रत आये रोमन अदालत में,
झूठे जुर्म उनपर कितने लगाये गये....
राज के सिखाये—दी गवाहों ने गवाहियां।
बोले—"यह राजा बनता है,
और बनता है प्रभु का पवित्र पुत्र—
पैगम्बर !"
"क्रूस पर मारो इसे।"
ऐसा पाइलट ने पुकारा न्याय आसन से....!
और वह महानेता,
रोमनों से घोर अपमानित किया गया।

मारा गया, पीटा गया, मुँह पर थूका गया....
सूली पर टाँगा गया नेता वह मरने को।
शान्ति का जो दयावान देता उपदेश था-
उसी को अशान्ति-मयी सजा दी यहूदियों ने
रोमनों की राय से....!
लिख दिया क्रूस पर ईसा के, कसाइयों ने-
"दो चोरों के बीच यही,
राजा है यहूदियों का....
हाथ में लिए हुए है दण्ड सरयत का—
झुके हुए सर पर सजाये काँटों का ताज !"

.....

प्रकाश

प्रकाश खासा खिला था, मैंने देखा अपनी आँखों उस समय जबकि परे आँगन के हरसिंगार-फूलों ने जरा-सी मस्तानी आँखें खोलीं। मैं तो उन्हें सूर्य-वंशी मानता हूं।

मगर; उनके आँखें खोलते ही दुर्भाग्य काले निशा-काल ने पृथ्वी से सूर्य को सरका छिपाया और अपना अंधेरा भरा अधिकार या आक्रोशन फैलाया।

यह बात सूर्य-वंशी स्वातंत्र्य प्रकाश प्रिय पारिजातों को जरा भी रोचकर न हुई। उन्होंने अन्धकार का सक्रिय-विरोध किया अपनी मृदुलता, कम-दलता और निशा-काल के विश्व-व्यापक बल को भूलकर। फलतः फूल धूल में मिल गए प्रतिपक्ष के पवन-पशुबल से, मगर रहे मुक्त हो, प्यारे स्वातन्त्र्य-सूर्य को प्राप्त कर ही।

....

पारिजातों का बलिदान !

अमावस निशा-काल पारिजात
डाल-डाल, डोल-डोल सौ जमात

व्याकुल स्वाधीन--सूर्य-दर्शन को सुप्रभात !
चुप--चुप--फुस--फुस कुछ कालिदल बोले--
(चल-मलमानिल में कल निर्मल-परिमल घोले)
"अन्धकार लगातार कब से सब आँखें खोले
कब आयेगा वह दिन ? कब जायेगी यह रात ?

अमावस निशा-काल पारिजात

पश्चिमीय—अन्धकार ने उत्तर—
(दक्षिण ज़रा न बामबाहु)
देखा पूर्व ही से था चुनकर,
"निशा—काल का है एक मात्र शत्रु दिनकर
सूर्य-स्वतन्त्र देखना है अतः उत्पात !"

अमावस निशा-काल पारिजात

"कुछ भी हो, हम सब है हरसिंगार"
बोल उठे पारिजात एक स्वर-एक तार—
"हंसते हम हर शिर पर या बपते हरिद्वार !
अन्धकार परदेशी की रे रुचती न बात !"
अमावस निशा-काल पारिजात !
"सरभीले, गर्वीले, ज्योतिधार
उज्वल हम-काला-यम अन्धकार
सरे शाम से ही तरु-देश पर अधिकार
है रे किये उत्पात, घात-घात-पर-घात !
अमावस निशा-काल पारिजात !
"लेता है बरबस रस, गन्ध और
काला-मुख अन्धकार गायक गुनी न और
काला ही दिल का है देखो यदि करो गौर !
ऐसे काल से तो मरना है महा आत्मघात !
अमावस निशा-काल पारिजात !
"देखना है जिन्हें स्वाधीन सूर्य
(जो कि दिव्य-ज्योति, रस, रूप पूर्य)
नाद करना है जिन्हें अपने कर मुक्ति-तूर्य
उन्हीं का—अन्धेर ! अन्धकार करे उत्खाद !!"
अमावस निशा-काल पारिजात !

"कुछ भी हो ! हम सब हैं हरसिंगार"
बोल उठे पारिजात एक सुर—एक तार—
"हँसते हम हर शिर पर या बसते हरिद्वार
नारकीय-अन्धकार की रे रुचती न रात !"
अमावस निशा-काल पारिजात !
बन बैठे फिर तो सब विद्रोही,
पारिजात निर्भय मन, निर्मोही !
सूर्य-स्वाधीन सज चले अपने को ही !
केसरिया-धरे तरुण-अरुण उगे पात-पात !!
अमावस निशा-काल पारिजात !
"ऐसी बात ! पारिजात सौ जमात
सूझी है तुम्हें खुराफात ? भाया तुम्हें उत्पात ?
ऐसी बात ? अपनी चालों से खाओ आप मात !
फूले फूल ! पाओ फल बेध, घात, दण्ड-पात !"
अमावस निशा-काल पारिजात !
"दमन-पवन ! मजब-गश्त करो !
दल को दल बागी सब लस्त करो !
दुख हालाहल बरसो, प्राण हरो, पस्त करो !
पृथ्वी पर करो पात—बदजात !"
अमावस निशा-काल पारिजात !

टूट पड़ा दाँत पीस न-क्षत्री
कुलिश-कराल, मन निशा-काल
अन्धड़, अन्धेर, अन्धकार धुआँधार चाल !
काँपे दिग्देव काँप उठी रात !!
अमावस निशा-काल पारिजात !

और सुकुमार सब सुन्दर तन
सुरभीले, गर्वीले, त्यागी-मन
हँसते हँसते करने लगे आत्म-अर्पण
हरसिंगार, मन्दार, पारिजात सौ-जमात
अमावस निशा-काल पारिजात !

बड़ी रे दमन रात बड़ी आह !
किन्तु लघु-फूल लड़े कड़े बिना परवाह !
खेत रहे दल के-दल, फूल उठी धूल राह !!
दिव्य-रक्त-रङ्गी चुनरी रे धरती के गात !
अमावश निशा-काल पारिजात !

"कुछ भी हो ! हम तो हैं हरसिंगार"
बोल उठे पारिजात एक सुर-एक-तार—
"हंसते-हम हर शिर पर या बसते हरिद्वार
जग नाशक अन्धकार की रे रुचती न रात !
अमावस निशा-काल पारिजात !

चढ़ बैठा यह, यह भी झड़ बैठे !
मनकी, मन-गांठ जैसे जड़ बैठे !
वायु-'गन'-मारे मारे टूट तड़ातड़ बैठे !
व्याकुल स्वार्थीन-सूर्य-दर्शन को सु-प्रभात !!
अमावस निशा-काल पारिजात !

आह ! मंदी रात, खुला सु-प्रभात !
पर कब ? जब झड़ पड़े पारिजात !
दलके-दल युत-परिमल, तन उज्वल सौ जमात !
धन्य आत्म-त्याग ! त्रिजग- भरी सरसीली बात !
अमावस निशा-काल पारिजात !

नन्दी पर त्वर शिवशंकर दौड़े !
छवि देखने को प्रजापति रमावर दौड़े !
सभी छोड़ मन्दिर, महल, घाट, घर दौड़े !
मुक्त तरु-तले लूट लग गयी हाथोहाथ !
अमावस निशा-काल पारिजात !

चन्द बने महाकाल वनमाला !
हरिद्वार चढ़े चन्द मुक्त-आला !
चुन ले गयी अनेक एक-एक सुर-बाला !
मेरी मौहनी के केश में भी सजे पांच-सात !!
अमावस निशा-काल पारिजात ! !

भारत–भ्रमर–गीत

(१)

परतन्त्रता-ऐसी !

(२)

जिसके घर मे भीख मागने देवराज आते,
दानवता के दास उसे टुकड़े है दिखलाते !
परतन्त्रता-ऐसी !

(३)

नाक रगड़ चरणो पर जिसके विश्व धन्य होता,
कान पकड़, बालक-सा, वह पर के सम्मुख रोता !
परतन्त्रता-ऐसी !

(४)

जिसके साधारण पुत्रो से 'उग्र' देव हारे,
क्षुद्र-मनुज उसके मस्तक पर जूते फटकारे !
परतन्त्रता-ऐसी !

(५)

जिसके चारो ओर कभी थी दिव्य-दुग्ध-धारा,
क्रूर-काल ने उसको, उस दिन, बे-पानी मारा !
परतन्त्रता-ऐसी !

(२)

तुम्हारा मधुबन बनवारी !
आज मसान समान बना है भीषण-भयकारी !
तुम्हारा०—
कठिन काल के क्रूर-करों से लतिकाएँ-प्यारी—
सन्तापित, दुखित, अपमानित, दलित गलित सारी !
तुम्हारा०—
कल-कदम्ब दल, सुमन हीन है नीरस-तन-धारी,
दिन प्रति-जीवन × रहित हो रही कालिन्दी-कारी !
तुम्हारा०—
सर, सरसिज सारे सूखे हैं—सूखी फुलवारी,
तुम्हें पुकार रुदन करती हैं भ्रमर—भीर—भारी !
तुम्हारा०—
द्विज-दल + मृग मण्डली सभी हैं ताप-अनय मारी,
बरस पड़ो घनश्याम सरस हों 'उग्र'-विपद-हारी !
तुम्हारा०—

× जल, प्राण। + पक्षी-चय।

(३)

(१)

मधुकर अब न मधुर गुन गाते,
अब न कमल निज विमल-रूप की पूर्व छटा दिखलाते।
हिमगिरि अब न धवल उतना है, जिस पर हम इतराते,
सुरसरि, सिन्धु, सरस्वती शोभा शून्य आज सब पाते!
सुन्दरता-आकर अनेक बन, नित्य बिगड़ते जाते,
सब फल-सरस' अरस सम दरसै हृदय शोक उपजाते!
कोकिल, कीट, कपोत, सारिका, मोर न गान सुनाते,
पराधीन भारत विलोक कर सबके सब दुख पाते!

(२)

प्रभु परतन्त्र हैं हम आज।
दलित हैं पर-पद प्रबल से गलित है सब साज।
प्रभु०!
देश पर, निज-वेश पर सर्वेश—! पर का राज,
पर-कृपा निर्भर स्व-पूजा, ध्यान और निमोज!
प्रभु०!
पर-उदर निज-अन्न से भर हम रहे मोहताज,
पर-कुशल निज अकुशल हित देत विविध खिराज!
प्रभु०!

घात पर पर-घात खाने का चला कु-रिवाज,
अपर-पर-वश जग न हम सम दास गण सिरताज !
प्रभु० !
दासता-वारीश में है 'उग्र' स्वत्व—जहाज ;
कर्णधार सभार प्रभु ! लाइये कुल - स्व-राज !
प्रभु० !

....

(४)

यहि दुख दहत हृदय दिन रात ।
जनम-भूमि-हित कर-सनेह बिन, जीवन-दीप बुझात !
यहि दुख दहत हृदय दिन रात । १ ।
पर-पद दलित गलित-तन, कातर जननि बहति बिलखात,
मम मन मूढ़ लखत स्वारथ दिसि रंचहु नहिं सरमात ।
यहि दुख दहत हृदय दिन रात । २ ।
जहं तहं नर-पशु निलज करत हैं परिबरतन पर घात,
कर, पद, रहत पंगु सम हैं, यह उर जारत गात ।
यहि दुख दहत हृदय दिन रात । । ३ ।

हिन्दुस्तान... !

क्या वह हिन्दुस्तान यही है ?
आर्य भूमि क्या यही पुरातन ऋषियों की सन्तान यही है ?
क्या वह हिन्दुस्तान यही है ?

[दोहा]

जिसके घर पर बैठकर, लेता जग उपदेश ।
आज वही अज्ञानवश, सहता भीषण क्लेश ॥

नरपुर का नवजीवन दाता, सुरपुर का अभिमानी यही है ?
क्या वह हिन्दुस्तान यही है ?

जिसके बल को सोचकर, सुरपति जाते काँप ।
आज वही हतबुद्धि बन, रहा पर चरण चाँप ॥

राम, परशुधर, भीष्म, द्रोण का बलमय जन्म स्थान यही है ?
क्या वह हिन्दुस्तान यही है ?

जिसके ऋषि-मुनि विश्व को, देते मन्त्र-स्वतन्त्र ।
पहन दासता-बेड़ियां आज वही परतन्त्र ॥

चन्द्रगुप्त, पुरु, भीमसिंह का श्री प्रताप का प्रान यही है ?
क्या वह हिन्दुस्तान यही है ?

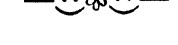

तृष्णा विशाला

पतझर बसन्त मेरे घर के
बाहर बसते दुख मे सुख मे
रोते हँस ते जी भर भर के
पतझर बेकार भिखारी है
सुख शान्ति का न अधिकारी है
दर दर करता झखमारी है
कौड़ी कौड़ी धेला धेला
मांगता 'चिरौरी' कर कर के
सौ हुनर लाख फन वाला है
फ़ला बसन्त धनवाला है
सब गुणमय कंचनवाला है
आला है जिसका टाट बाट मे
देख लाट पीछे सरके
उस रोज शाम को वह पतझर
नत विनत भाव भिक्षा-तत्पर
जाकर बसन्त की ड्योढ़ी पर
कुछ लगा जांचने धनवाले
श्रीमान सेठ की जय करके
लेकिन बसन्त था जोड़ रहा
जो उसके पास करोड़ रहा

पर एक अधेला छोड़ रहा
भला हिसाब में व्यापारी
डूबा किताब में मय करके
पतझर को उसने फटकारा
होकर नर तूने झखमारा
आलसी रहेगा बेचारा
जा आख ओट है खोट
अधेला 'टोट' रहूं पूरा करके
या यदि तू है कुछ साधु-सन्त
आ चमत्कार दिखला महन्त
मिल जाय अधेला तो तुरन्त
मैं दान तुझे खाता-उचन्त मे
लिख कर दूं अपने घर के
पतझड़ खड़-खड़ कर उखड़ हंसा
उसने सोचा मैं कहाँ फंसा
गज की तलाश में मिला मसा
पर खैर दिखाऊं चमत्कार
इसको जरूर कुछ कर धर के
हां बाबा आंखें बन्द करो
उज्वल यह दीपक मन्द करो

तृष्णा विशाला

झुक-झुक कर सिजदे चन्द करो
फिर मिले अधेला चमत्कार
मेरा देखो आँखें भरके
आतुर बसन्त ने मन्द किया
दीपक, आँखों को बन्द किया
अब पतझर ने यह छन्द किया
कर पर बसन्त के धेला धर
सरका जैसे सर सर सरके।

....

साध

विश्व — विधायक
हे वर — दायक
हे जगती के सतत जागरित मानवी अज्ञात
हो कर निर्दय
मर्म हीन नय
मेरे जीवन मे धधका दो उज्जल अग्नि प्रभात
उस प्रभात मे
घात — घात मे
पात-पात पर जीवन-तरु के नाच उठे उत्पात
बह्नि — वज्र कर
अरुण—कर निकर
मेरे लाल लाल प्राणो पर करें घात प्रतिघात
ध्यान — हीन हो
ज्ञान — हीन हो
हृदय-हीन हो मैं हो जाऊं कुछ ऐसा उन्मत्त
भर उमङ्ग भर
शान्ति - मार्ग पर
क्रान्ति-जाप, उत्क्रान्ति-ताप से करूं विश्व सन्तप्त
हे शिव — सुन्दर
सत्य निरन्तर

मेरी मङ्गल-मय सुन्दरता का हो सत्यानाश
थहरे खर—खर
कंहरे मर - मर
जल-जल कर मेरा प्रिय पतझर पावे विकट विनाश
हे प्रलयङ्कर
भीम भयङ्कर
दुख दावानल से दग्-दग् हो मैं न उठूंगा काँप
तेज निकालो
शक्ति संभालो
दहकाओ, झुलसाओ, फूंको, दो मुझको अभिशाप

.....

जीव से (१)

जीव ! न जीवन पर इतराना !
यह 'थाती' है विश्व-पिता की तू है एक बहाना ! जीव !

(१)

न अपने आपको बदनाम करना !
भला बनकर भला मे नाम करना !
मिली जो शक्ति है, कुछ काम करना !
न कर पर हाथ धर कर शाम करना !
निज, घर, बाहर, नगर, देश, दुनिया को भला बनाना !
ना ना कर यदि बैठ रहेगा तो होगा पछतावा ! जीव !

(२)

नहीं 'नेपोलियन' दिखला रहा है ।
नज़र मे 'जार' अब कब आ रहा है ?
समझ ले आज 'कैसर' क्या रहा है ?
बहुत ही सच किसी ने यह कहा है—
'धन, यौवन, जीवन का जग में क्षण भर भी न ठिकाना ।'(अस्तु)
बल तूने यदि कुछ पाया है, दुर्बल को न दबाना ! जीव !

(३)

बता, धन तुच्छ पर जलसा करे क्या ?
जनाता यह न मृग-जल-सा अरे क्या ?
लहू-सा 'सूद' लेने को मरे क्या ?
उसे ले जायगा उर पर धरे क्या ?

कम लालच कर रे, कमला (२) है चलता, बड़ों ने माना !
खो जाना खेलवाड़ यहां है छोटा बड़ा खजाना ! जीव !

(४)

अधर से हार खायी थी उषा ने !(३)
निरख नासा झुकाया सिर सुआने
रहे रद, दाड़ियों के दिव्य दाने
मगर सब ही गये अपने ठिकाने
समझ 'रूप' सम्पत्ति सपने की भूल न हाथ लगाना !
है तुझपर करज़ा उसका यह मूढ़ ! अदा कर जाना ! जीव !

---

(१) जो 'मनुष्य' कहलाता है । (२) लक्ष्मी । (३) उषा की लाली जिसके अधर की लाली के सन्मुख तुच्छ थी ।

मेघ-राग

मेरे आंगन में एक बार—

पनपे पावस का अन्धकार
बादल के बालक दल सुधार
जलनिधि जय करले बल अपार
उमड़ें घुमड़ें घहरें गरजें
चमकें चम-चम चंचलाकार

भीमाकृति हो भव भव्य-भाल
मेरे आंगन में एक बार !

प्रलयानिल के झोंके प्रचण्ड
तरु, पात, डालकर खण्ड-खण्ड
झंझा-स्वर से झकझोर घोर
बिखरा दें जीवन के घमण्ड
ऐसा कुछ हो घनघोर शोर
ग्रह, उपग्रह, मारुत मारतण्ड

हों अस्त-व्यस्त, विपतग्रस्त, त्रस्त !
मेरे आंगन मे एक बार !

ताण्डवित, उग्र, तर्जित, समुद्र
विप्लव-विह्वल, वित्तुंध, विश्व
जल-थल, अचलाऽचल, क्षुद्र-रुद्र
पूरित कोलाहल उथल-पुथल!
गगनाञ्चल में शत-शत कराल
तमसाकृति-फन-युत व्योम-व्याल
चंचला लोल रसना निकाल
दें विषवत जीवन-अमृत ढाल

अपना सब कालापन निखार
मेरे आंगन में एक बार!

.....

मृत्यु-गीत

मैंने कहा—

हे मैं ! मुझे मरण न दीजियो !
मरण महान अवसान है
रूप, रुचि; रस-हीन जीवन का दान है ।
वासना का, मोह का
मयंक-मुख मोहनी का
मेरी-मयी माया का मसान है
काल का कृपान है ।
मरण महान अभिशाप है ।
जागरण, ज्योति, जग, जीवन का पाप है ।
तन, मन, प्राण
बहिरङ्ग, अन्तरङ्गता की
सीमित असीमता का नाम है
नाश का मिलाप है ।
मरण महान सुख त्याग है
दाहक, दुखद, दुनिया का दिल-दाग है ।
तान, स्वर, ताल,
राग-हीन, अनुराग-हीन
भय का कराल काल नाग है ।
अनर अभाग है ।

× पद-चिन्ह

जीवन का दीपक जला-जला
प्रतिकूल पवन, जल, थल, वनमें जब मैं प्रियतम को ढूँढ चला !
घन घिरे, उपल बरसे, रोड़े अड़के, कण्टक-दल खूब खला !!
दिन बना प्रकाशित अन्ध तमा
सन्ध्या के पीछे घोर अमा
बे-खोज, टोह, भटका-भरमा
जितनी-उतना ही प्रेम पला !
प्रतिकूल-पवन, जल, थल, वनमें जब मैं प्रियतम को ढूँढ चला !
योंही तो आई मध्य-रात
सब-सृष्टि शान्त जीवन 'बरात'
रुक रहा राग, थम गया गला !
जब मैं प्रियतम को ढूढ़ चला....
प्रतिकूल-पवन, जल, थल, वनमें जीवन का दीपक जला-जला !
सब आशाओं से हो निराश
बे - उज्वल - रेखा—वे प्रकाश
टकटोर ओर से छोर नाश
व्याकुल मैं विस्मित गया छला....!
प्रतिकूल-पवन, जल, थल, वनमें, जब मैं प्रियतम को ढूँढ चला !
बस इसी समय बिजली दमकी—
तम-रात चीरकर ज्यों भ्रमकी—

प्रियतम की छवि-चपला चमकी !
पद-चिन्ह एक दिखला उजला !!
प्रतिकूल-पवन, जल, थल वनमे जब मैं प्रियतम को ढूंढ़ चला !
पद-चिन्ह-प्राण ! मम-हर,छवि हर....
अग जग जीवन से उठा सिहर !
तन-मन में फिर, मादक-मर्मर !
गुल हंसे अहा ! खुल गया गला !!
प्रतिकूल-पवन, जल, थल, वनमें जब मैं प्रियतम को ढूँढ़ चला !

× श्री 'ललित' के लिए !

युग—पुरुष

पूर्व की प्रकाशमान आत्मा
महाराज गान्धी हैं महात्मा....
इनकी महिमा विचित्र, कर्म वचन मन पवित्र,
धीर महावीर चित्र !
नीच-ऊंच, शत्रु-मित्र, एक समाँ !
मुट्ठी भर हड्डी ले ये दधीचि चमकीले
करते पंजर धीले
राज-सम्राज सामने नमा !
महाराज गान्धी हैं महात्मा....
'हिटलर' नाशक महान, 'स्टालिन' शासक महान
'चर्चिल क्या शक महान
रङ्ग 'रूजवेल्ट' का जहाँ जमा
महाराज गान्धी हैं महात्मा....
मानव को रे ! मानव खाता है बन दानव !
पुत्र — नारि — बन्धु — विभव
सबको कितने बैठे हैं गमा !
महाराज गांधी हैं महात्मा....
पश्चिम लोहूलोहान, उत्तर – दक्षिण मसान
क्षत – विक्षत पूर्व – प्राण
रक्तपात, मारकाट घोरघमा !
महाराज गान्धी हैं महात्मा....

एक - एक रहा कोंच मार - मार गृद्ध - चोंच
मांस - हाड़ नोच - नोंच
स्वार्थ की महान चौकड़ी धमा
महाराज गान्धी है महात्मा....
कोलाहल चल भूतल, हरजन हरिजन बे-कल
नाश - नाच चरण चपल
सृष्टि का विकास जहाँ है थमा !
महाराज गान्धी हैं महात्मा....
"मज़हब स्वीकार करो !" थे कहते "प्यार करो"
बन्द 'वार' मार करो !
ज्योति भरो! हरो अन्धकार तमा !
महाराज गान्धी हैं महात्मा....
इनकी महिमा विचित्र,. सत्य सदा सु-पवित्र,
सम्यक — सम्बुद्ध — चित्र !
नीच-ऊंच, शत्रु-मित्र. एक समाँ
महाराज गान्धी हैं महात्मा....

.....

दीनबन्धु-लेनिन

सफल क्रान्तिकारी !
ईसाई था तू ही सच्चा 'ईसा' का अनुगामी तू था (१)
क्षुद्रातिक्षुद्र झोपड़ियों का प्यारा अन्तर्यामी तू था !
दुखियों का भूखों मरने वालों का सुन्दर स्वामी तू था,
निज मातृ-भूमि के अंचल का विख्यात 'लाल' दामी तू था !
नामी तू था तलवार-वीर, मानवता-अनुगामी तू था,
दानवता, पशुता के विनास का विश्वविदित हामी तू था !

(२)

रूखी-सूखी झोपड़ियों को हरियाली से आभूषित कर—
नर-पशुओं की मांदों-महलों-को तूने कर डाला खंडहर !
तेरी 'पर-दुख-कातरता' से 'सहृदयता' की आँखें हैं तर,
हे उग्र ! उग्रता से तेरी अत्याचारी काँपे थर थर !
दर-दर दानों को वे रोते जो दीनों से कहते—"मर ! मर !!"
घर-घर आनन्द मनाते वे जिनका तू था 'ग़रीब-परवर !'

(३)

तेरे शुभ-कार्य-समर्थन को कब चाटुकारिता आती थी,
रणचण्डी(२) ही तेरी महिमा सब ओर सदा फैलाती थी !
सुख पाती थी तेरे यश से जनता वह जो दुख पाती थी,
तेरी दयालुता सोच-सोचकर उसकी भर आती छाती थी !
गाती थी तेरी विजय गीत, दुर्बलतायें इतराती थी,
प्यारा लेनिन चिरजीवी हो प्रभु से दिन रात मनाती थी !

(४)

मुकुटों को-जिनमें रक्त लगा था दीनों का-तूने तोड़ा !
कंकालों (३) के सिंहासन को टुकड़े-टुकड़े करके छोड़ा !
तेरे न्याय्य मनोरथ के पथपर जिसने डाला रोड़ा,
बल से तूने उस पापी का सम्बन्ध मृत्यु ही से जोड़ा !
तोड़ा(४) जोड़ा(५) जिसने छलसे उसको तूने जोड़ा तोड़ा (६) !
"रक्षक, भक्षक,-सज्जन, दुर्जन"(७)-तेरा परिचय थोड़ा थोड़ा !

(५)

प्यारे, मानवता का प्रेमी ! क्या आज बड़े इजलास(८) गया ?
क्या दीनजनों-भक्षकों का करने पेश क्रूर-इतिहास गया ?
तू देख ! दुखित तेरे किसान मानो उनका उल्लास गया ?
पीड़ित, पुकारते, रोते हैं उन सबके मुखका हास गया !
जो तुझे 'भयानक' कहते थे, शायद अब उनका त्रास गया !
पर 'उग्र' हृदय की कविता का अत्यन्त मनोहर-प्रास गया !

---

(१) एक स्थान पर महात्मा ईसाने स्वयं कहा है—"I came here not to send peace but to sword ..." (२) We here sounds of approval not in the sweet murmur of praise, but in the wild shouts of anger. (महात्मा लेनिन) (३) अस्थिपंजर, (४) हजारों रुपयों की थैली, (५) एकत्र किया। (६) नष्ट किया। (७) परित्राणाय साधुनां बिनाशाय च दुष्कृताम्—(गीता में श्री कृष्ण) (८)बड़ा इजलास—सर्व शक्तिमान का दरबार (स्वर्ग)।

दीनबन्धु-लेनिन

सफल क्रान्तिकारी !
ईसाई था तू ही सच्चा 'ईसा' का अनुगामी तू था (?)
क्षुद्रातिक्षुद्र झोपड़ियों का प्यारा अन्तर्यामी तू था !
दुखियों का, भूखों मरने वालों का सुन्दर स्वामी तू था,
निज मातृ-भूमि के अंचल का विख्यात 'लाल' दामी तू था !
नामी तू था तलवार-वीर, मानवता-अनुगामी तू था,
दानवता, पशुता के विनास का विश्ववंदित हामी तू था !

(२)

रूखी-सूखी झोपड़ियों को हरियाली से आभूषित कर—
नर-पशुओं की मांदों-महलों-को तूने कर डाला खंडहर !
तेरी 'पर-दुख-कातरता' से 'सहृदयता' की आँखें हैं तर,
ऐ उग्र ! उग्रता से तेरी अत्याचारी काँपे थर थर !
दर-दर दानों को वे रोते जो दीनों से कहते—"मर ! मर !!"
घर-घर आनन्द मनाते वे जिनका तू था 'ग़रीब-परवर !'

(३)

तेरे शुभ-कार्य-समर्थन को कब चाटुकारिता आती थी,
रक्तचण्डी(२) ही तेरी महिमा सब ओर सदा फैलाती थी !
सुख पाती थी तेरे यश से जनता वह जो दुख पाती थी,
तेरी दयालुता सोच-सोचकर उसकी भर आती छाती थी !
गाती थी तेरी विजय गीत, दुर्बलतायें इतराती थी,
प्यारा लेनिन चिरजीवी हो प्रभु से दिन रात मनाती थी !

(४)

मुकटों की-जिनमें रक्त लगा था दीनों का-तूने तोड़ा !
कंकालों (३) के सिंहासन को टुकड़े-टुकड़े करके छोड़ा !
तेरे स्वर्गीय मनोरथ के पथपर जिसने डाला रोड़ा,
बल से तूने उस पापी का सम्बन्ध मृत्यु ही से जोड़ा !
तोड़ा(४) जोड़ा(५) किसने छलने उनका तूने जोड़ा तोड़ा (६) !
"रक्षक, भक्षक,-सज्जन, दुर्जन"(७ -तेरा परिचय थोड़ा थोड़ा !

(५)

प्यारे, मानवता का प्रेमी ! क्यों आज बड़े इजलास(८) गया ?
क्या दानवता-पक्षों का करने पेश क्रूर-इतिहास गया ?
तू देख ! दुखित तेरे किसान मानो उनका उल्लास गया ?
पीड़ित, पुकारते, रोते हैं उन सबके मुखका हास गया !
जो तुझे 'भयानक' कहते थे, शायद अब उनका त्रास गया !
पर 'उस' हृदय की कविता का अत्यन्त मनोहर-प्रास गया !

---

(२) एक स्थान पर महात्मा ईसाने स्वयं कहा है—"I came here not to send peace but to sword...." (२) We here sounds of approval not in the sweet murmur of praise, but in the wild shouts of anger. (महात्मा लेनिन) (३) अस्थिपंजर, (४) हज़ारों रुपयों की थैली, (५) एकत्र किया। (६) नष्ट किया। (७) परित्राणाय साधुनां विनाशाय च दुष्कृताम्—(गीता में श्री कृष्ण) (८)बड़ा इजलास—सर्व शक्तिमान का दरबार (स्वर्ग)।

लड़के लड़के कहलाओगे !

चाहे ख़राब हों मुसल मान, हिन्दू अच्छाई के घर हों,
चाहे हिन्दू हों बेईमान, सब मुसलमान पैगम्बर हों ।
पर अब तो आवश्यकता है, हम धागे हों, वे गौहर (१) हों,
हर्षित हो जननी हार(२) देख, दुखित विपक्ष-दल के नर हों ।
इससे हम कहते 'उम' मिलो ! वरना पीछे पछताओगे,
लड़के लड़ तोड़े जाओगे, लड़के लड़के कहलाओगे !

.....

(१) मोती (२) माला ।

असहयोग करो उससे सभी

(१)

मर रहे जिसकी छल—नीति से,
डर रहे जिसकी अति भीति से !
सुख नहीं जिससे मिलता कभी
असहयोग करो उससे सभी ।

(२)

अमृत दे न, सदा विष-दान दे !
दुख—कथा पर जो नहीं कान दे ।
नहिं सधे जिससे हित एक भी—
असहयोग करो उससे सभी ।

(३)

नित करें पशु सा कर्तव्य जो
हर रहा जन—जीवन द्रव्य जो !
सजग हो कर के, मिलके अभी,
असहयोग करो उससे सभी ।

(४)

तुम लड़े जिसके हित के लिए
स्व-धन, जीवन की बलि भी दिए ।

यदि कृतज्ञ न हो वह भी कभी—
असहयोग करो उससे सभी ।

(५)

जब प्रजा सुत का नृप तात हो—
कर सदा करता हल घात हो—
हृदय है अपना कहता तभी—
असह योग करो उससे सभी ।

.....

बन्दी-गृह

गंगाधर की तप-भूमि निराली वन्दे !
अरविन्द--मुक्ति-जप-भूमि-निराली वन्दे !
पंजाब--केसरी के अत्यन्त दुलारे !
वन्दे बन्दी-गृह कर्मवीर के प्यारे !

(२)

मोटी भोजन देकर तू हमें बताता,
'गाढ़े समयों में काम यही है आता।'
मन्दिर स्वतंत्रता भ्रान्त-पथिक के तारे,
वन्दे बन्दी-गृह कर्मवीर के प्यारे !

(३)

तू तनको, मनको अबल सबल करता है
सारी कुवासनाओं का संहर्ता है।
मिथ्याभिमानियों के मद तूने मारे
बन्दे बन्दी-गृह कर्मवीर के प्यारे !

(४)

तू अबल सबल कोक भी न करता दो है,
राजा होये या रङ्क एक तुझको है।
तेरे घर के कानून विश्व से न्यारे,
वन्दे बन्दी-गृह कर्मवीर के प्यारे!

.....

काल-कोठरी

निर्भय हैं ! हम सब निर्भय हैं !!
तेरे घर एकान्त कोठरी ! आये अतिथि अजय हैं !
वंचित करें सूर्य से भी वे
चन्द्र देखने दें न कभी वे
और रोक लें वायु अभी वे
क्या चिन्ता है, कर लेने दें जितने घोर अनय हैं।
निर्भय हैं, हम सब निर्भय हैं !
रामबाँस लाते हैं, लाये !
इसके लिये नहीं धमकायें !
अपनी पूरी शक्ति दिखायें
पर खायेंगे हार, मान ले दुर्बल ही पर्जय हैं !
निर्भय हैं, हम सब निर्भय हैं !
हम सब भी मरनेवाले हैं
क्या बिगड़ा है जो काले हैं,
छके प्रेम-रस मतवाले हैं,
चरण-कमल पर मातृभूमि के अपने दिये हृदय हैं।
निर्भय हैं, हम सब निर्भय हैं !

.....

दो कविताएँ

रामगढ़ में—

वज्र गरजा प्रलय के बादल घिरे, बरसे
तर-ब-तर फर्दोबशर हर, पाउँ तक सरसे!
दूर लाखों लोग सूबे से शहर, घर से
रामगढ़ में जिस कदर आराम को तरसे
कौन कर सकता बयां—आकाश ऊपर से
बरसता था समन्दर को उठा भू पर से!
शोर हा-हा कार, मूसलधार झर-झर से
चंचला तड़-तड़ित भीमाकार भू-धर से!!

× × × × ×

और फिर भी एक दिल दहला नहीं डर से,
थे डटे सब, एक भी खिसका नहीं दर से!
जो चले घरसे कफन को बांधकर सरसे
कौन जीतेगा भला उस नारि या नर से?

.....

अकाली चले !

(१)

सिंह सोते जगे, वीर रस में पगे,
धर्म के प्रेम की छान प्याली चले !
जाति की जान हैं देश की शान ये,
दुःखमय-हिन्द के मुंह की लाली चले !
खून से इनके सींचा गया कल जो था,
उस गुरु के बगीचे के माली चले !
"पंचनद" को जगाने की खातिर अहा !
वीर सच्चे, बड़े भाग्यशाली चले !
मस्तकों पर सजा पाग-काली-चले !
मोरचों पर बहादुर अकाली चले !!

(२)

कहते हैं वे–हमें है न पर्वा जरा ,
चाहे उनकी तरफ से दुनाली चले !
अबतो रुकते नहीं फैसले के बिना ,
गन्-मशीनें क्यों न 'ज़लियान' वाली चले !
छातियाँ खोल देंगे खड़े होके हम ,
गर कहीं तोप फौलाद ढाली चले !
देख लेना 'विजय माल हम पायंगे ,
क्या हुआ है अगर हाथ खाली चले ?
ढूँढ़ने को 'यरोदा' की ताली चले !
मोरचों पर बहादुर अकाली चले !!

.....

गौराङ्ग

खोपड़ी पै हिन्द के चढ़े हैं जब से ये गोरे
खो पड़ी तभी से विद्या बुद्धि मिले छल छन्द।

जो पड़ी विपत्ति सिर देश के उसे क्या जानो
झोंपड़ी न बची शेष रहा नहीं मूल कन्द।

सो पड़ी समस्त जाति अंक में कुदासता के
मार बरसो पड़ी न हुआ अविचार बन्द।

रो पड़ी जो एक बार जननी हमारी उफ़'
आज लौं रुलाते जाते उसे अङ्गरेज़ चन्द।

.....

सुख का पता

बागन में, बारिजमें, बल्लरी में, बाटिका में,
बौरे में बसन्त-द्रुम हूँ के खोजि डार्‌यो मैं।

वृन्दाबन--कुञ्ज--बर, ब्रज--बनितान--पुञ्ज,
गुञ्जरत मञ्जुन मलिन्द पेखि हार्‌यो मैं।

बारानसी-धाम बामदेव जू को नाम दिव्य,
देवसरि-धार में न देखि निर धारि्‌यों मैं।

विश्व बीच है न सुख 'उग्र' पर इते माहिँ
कारागार श्रृंखलानि-हार में निहार्‌यो मैं॥

चमकीली चर्चाएँ

[तुकबन्दियाँ]

यौवन क्या है ?

नव मानव जीवन का
मधु-उत्साह—
अति असत्य का-सचमुच
प्रबल—प्रवाह !
रंग भंग का रंग
रंगीला खेल....
यौवन चमका—तमका
सिन्धु अथाह....!

जीवन क्या है ?

जन्म-जन्म के कटु—
कर्मों का भोग....
जिसे जानता दुख,
संयोग, वियोग....
मोह-जाल में फँसा
जागता जीव....
जीवन है रे ! जाहिर
जगमग-रोग !

साजन क्या है ?

पत-झर बोला विभु का
नाम वसन्त....
राम, श्याम हर बोले
सन्त, महन्त,
'साजन' मैंने कहा
दिल्लगी देख !
जन-जन जाने जादू
आप अनन्त....

साधन क्या है ?

धन-साधन आनन्द
नहीं है खास
मृग-जल-सा जीवन का
हास-विलास....
रंग जमाना भूल
नाच मत नीच !
विश्व-देव का बन जा
दास—उदास....

———

सन् ३७...!

[तुकबन्दी]

आज आगया मुझे यह ख्याल,
सुनाऊँ सन् ३७ का हाल !

× × ×

सन् ३७ जब विश्व मंचपर आया था परसाल,
चर्र मर्र चाबता हड्डियों के कठोर-कंकाल !
लिये भयानक कर में जलती-स्पेनिश-युद्ध-मशाल,
सन् ३७ जब विश्व-मंच पर आया था परसाल—
प्रलय सी-हलचल उसकी चाल!
काले और-श्वेत खूनों से रंगे चौगा लाल—
सन् ३७ जब विश्व मंचपर-आया था, परसाल।
पहने माल, मुण्ड वीरों के नहीं ! किन्तु कंकाल
बेबस, बेचारी जनताके ! नर्त्तन-रत-बैताल....
प्रलय सी-हलचल उसकी चाल !
स्टालिन, मुसोलिनी, हिटलर, फ्रैंको, जाय 'रमाल'
सन् ३७ में नये रुद्रसे 'डिक्टेटर' विकराल !
मध्य सिन्धु में चला कशमकश, जैक यूनियन लाल
नीला-पीला ढीला रे ! जिब्राल्टर पर बेहाल !
कुटिल है मुसोलिनीकी चाल !
सन् ३७ में फासिस्टों का 'अपना ! अपना!'—गान,
अपनी-अपनी-डफली पर-बेसुरा और बेतान
ऐसा भैरव छिड़ा पश्चिम के आंगन में जोर !

अपना--अपना ! अपना ! का सब ओर भयानक शोर
स्वार्थ का कट कट बड़ा कराल !
सन् ३७ में स्पेन देश के वीर बाँकुरे बेग....!
कटे-मरे, आपस मे लड़के 'महाभारती—'रंग !
मौखिक नहीं मशीनगनों का, तोपों का संवाद !
साम्यवाद और शक्तिवाद में भीषण चला विवाद !
काल की जलने लगी मशाल !
भाई ने भाई को मारा, बेटे मारे बाप !
सन् ३७ में दिखलाया कुछ कालिका चण्ड प्रताप !
सभी चाहते स्वार्थ आत्म विस्तार—और परमार्थ
जाता ठुकराया 'साउथ'से 'वेस्ट' 'ईस्ट' से 'नार्थ' !
बना है बेचारा 'फ़ुटबाल' !
सन् ३७ में बादल--बालक-सा छोटा जापान
चढ़ कर फैला आसमान में पूरब के, बलवान
उसके सैनिक लगे मारने घेर-घेर कर जान
मरे युगों के अमर चीनियों की किस्मत हैरान !
मुसीबत में सब जानों माल !
सन् ३७ में उसी 'लीग' की मिट्टी हुई पलीत,
हब्शी युद्ध में दब कर जो था इटली से भयभीत,
जिसने नहीं लगाया 'सैंकशन', शक्तिवान प्रतिरोध,

रोमन अतताइयों का जो कर न सका गतिरोध
टूटता 'टेम्पल,' हिलता 'हाल' !
'डिक्टेटर' स्टालिन ने मारे—कार्लमार्क्स-मतिवान
कितने नेता, सन् ३७ में, छोटे और महान !
कामरेड लेनिन के संगी. त्यागी ज्ञानी वीर
गये मौत कुत्तों के मारे, सुनकर सभी अधीर !
बोलशेवी-हिटलर विकराल !
सन् ३७ में एडवर्ड अष्टम, भारत सम्राट्....
हुए अमर अपने महत्व से होकर बारह बाट !
मिसेज़ सिम्पसन, अर्ल बाल्डविन(मिस्टर, तब) मशहूर
हुए प्रेम और कूटनीति के लिए, निकट या दूर
मोह-मानस के मंजु मराल !
प्रेम पन्थ में मिले गोर्कि, अकसर, मजनूँ, फरहाद
किन्तु, ब्रिटिश-किंग एडवर्ड की बहुत रहेगी याद !
पढ़ा न किसने होगा युग का वह अद्भुत संवाद
राज-पाट तिनके-सा त्यागा 'हृदय न हरष विषाद'
प्रेमका सौदा कैसा माल !
और, मिला सन् ३७ में भारत को नया विधान...
जिससे सूबों के शासन में आयी नूतन जान !
जमींदार, तालुकेदार लाचार, हुए हैरान,

मोह महानिद्रा से ज्यों-ज्यों जागे जड़ित किसान,
जग मगा उठे जवाहर लाल!
काँग्रेस और ब्रिटिश-नीति में 'अरविन' वाला मेल
दिशा-दिशि, सन् ३७ में फैला सरपट, रेलारेल!
देश भक्त सब हुए मिनिस्टर, हाँ, 'देशी प्रोग्राम'
सुप्रभात--सा--बिखरा निखरा, दीन दमन की शाम
खुली जंजीर, बंधी रे माल!

× × ×

सन्' ३७ जब विश्व-मंच से जाता था उस रोज....
शराबोर पैरहन लहू से उसका गर्म हिनोज!
खूनी देखे चश्म, चढ़ा था अभी 'वार' का 'डोज'
सन' ३७ जब विश्व--मंच से जाता था उस रोज—
प्रलय-सी हल चल उसकी चाल!

साहित्य

(१)

दिवस कंचन के होते और—
निशा होती है मुक्तामयी ।
लगा रहता है सुखका दौर ,
सदिच्छाएँ रहती हैं नयी ॥
वहाँ के जन होते कृत कृत्य—
जहाँ का सुन्दर है साहित्य !

(२)

एकता का होता है राज्य,
शान्ति की जम जाती है धाक ।
दुष्टता, द्रोह, द्वेष-दल त्याज्य–
सभी करते, प्रेमामृत छाक ॥
वहाँ पर रहता है औचित्य
जहाँ का सुन्दर है साहित्य

(३)

वहाँ होते बालक धी-मान ,
बालिकाएँ होती धी–मती ।
पुरुष होते सच्चे श्रीमान ,
नारियाँ भी सच्ची श्रीमती ॥
प्रेम निर्झर झरता है नित्य
जहाँ का सुन्दर है साहित्य !

वैषम्य

किसी का करुणा क्रन्दन,
किसी की-वाह !-वाह !!-है !
किसी का शुभ अभिनन्दन,
किसी की-आह ! आह !! है !!
वासना की पुतलियों का कहीं होता गान,
कामना की बेलिकी जाती कहीं पर जान,
उषा का मन्द-हास है,
निशा का सर्वनाश है !
वनज घर सुख-विलास है,
कुमुद घर त्रास-त्रास है !
भ्रमर मन आनन्द भर करते वहां गुंजार
हाय, हाय ! चकोर कर रोते वहीं सौ बार
दलों से बिछुड़ी-टूटी,
कुसुम की कोमल बेटी—
गयी असमय में लूटी—
पड़ी बन्धन में लेटी !
फूट-फूट बिसूर लेती हाय ठण्डी सांस
और कोई खिलखिलाता उसका करे उपहास

.....

पाप-२

गाओ गाओ ! सब रक्त-रागिनी गाओ !
पहनाओ !—हमको मुण्ड-माल पहनाओ !
लाओ, लाओ ! खप्पर भर-भर कर लाओ !
भूकम्प भयानक भव्य भूमि पर जाओ !
हे अन्धकार ! अवनी को जा अपनाओ !
भीषण करालते ! ताण्डव-नृत्य दिखाओ !
लाओ, लाओ खप्पर भर-भर कर लाओ !
सहृदयता की छाती का खून बहाओ !
मानवता का मन-मोहक-मुण्ड मंगाओ !
करुणा, दयालुता का अस्तित्व मिटाओ !
लाओ, लाओ ! खप्पर भर-भर कर लाओ !

विप्लव-गान

भैरवी नाच रही है
व्याह में दानवता के !
सभी को मोह लिया है
राग विप्लव का गाके !
रण-स्थल, रंगभूमि पर
तना अम्बर बितान है,
रक्त रेखाओं का दल
सजा चौका समान है !
भैरवी नाच रही है !!!

× × ×

डटे योद्धा — बाराती
धरे केसरिया बाना
देखते हैं यह नर्त्तन
और सुनते हैं गाना
ताल नरमुण्ड दे रहे
धमा धम रुण्डों से गिर
झनाझन कर स्वर भरता
कृपाणों का दल अस्थिर !
भैरवी नाच रही है !!!
तुमक का तर्जन-गर्जन,
भयङ्कर 'हा हा' करना

कटे मुण्डों का रव है—
भैरवी का स्वर-झरना !
योगिनी दल के खप्पर
छलकते शोणित से भर
वही तो है गुलाबजल
उसीसे तन सबका तर !
भैरवी नाच रही है !!!

× × ×

रणस्थल के मण्डप में
रुद्र का पूजन होता
'हा!-हा !-हो-हो-हो !!'ही
मन्त्र उच्चारण होता
पुष्प अगों के चढ़ते
पूत हो शोभित-सर में
पड़ी माला मुण्डो की
'उग्र' के कण्ठ अधर में !
भैरवी नाच रही है !!!

.....

श्मशान

(१)

सैकत-शय्या एक तुम्हारे पास है,
दिव्य देव-सरि पात्र एक जलपान का,
अर्धमास तक अंधेरे में वास है,
इन्दु-करों से दीपक पाते दान का।

(२)

एक मात्र आहार तुम्हारा वायु है,
अम्बर है प्राचीन एक आकाश ही;
सुनता हूं मैं अन्त हीन सब आयु है
मृत्यु प्रिया विख्यात, पुत्र है नाश ही !

(३)

ऐसे निर्धन तुम्हीं एक संसार में—
धनकुबेर भी जाते जिसके द्वार पर;
तुम हो सबसे बड़े विश्व के प्यार में,
जग—विश्राम—स्थान तुम्हारा गेह वर।

(४)

मित्र तुम्हारे कुक्कुट, गृद्ध, शृङ्गाल हैं,
परम शान्त वीभत्स तुम्हारा रूप है;
आभूषणवत् अस्थि और नृ-कपाल हैं
भूतल पर तव वेश श्मशान अनूप है।

(५)

शत्रु तुम्हारे जीवित प्राणी हैं सभी,
मृतक-मित्र तुम सा न और है दूसरा;
तुम तब तक सहयोग न करते हो कभी,
मानव को जबतक न जान लेते मरा !

(६)

पथ का भिक्षुक रहे या कि, सम्राट हो,
शक्ति-हीन या भीमसेन-सा हो बली;
चाहे कोई अपने घर का लाट हो,
अङ्क तुम्हारा सबकी विश्राम-स्थली !

(७)

तनसे लेकर पंचतत्व तुम बाँटते,
क्षिति, पावक, जल, भूमि और आकाश को:
मन से सबके मोह-रज्जु हो काटते,
दिखलाकर स्वर्गीय पवित्र प्रकाश को ।

(८)

पर श्मशान हो क्रूर बड़े हम जानते,
कर्म तुम्हारे दुःखद होते हैं महा !
जिसको हम जीवन-धन अपना मानते,
नाश देख कर उसका कहते हो "अहा !"

(९)

पुष्पों की, कोमल-वस्त्रों की, हृदय की,—
सेज साजते थे हम जिस प्रिय के लिए;
इति कर दी तुमने भी निश्चय अनय की—
काष्ठ-चिता-शैय्या देकर उसके लिए!

(१०)

रो-रोकर हम वह्नि बुझाना चाहते—
'हो'-'हो' कर तुम उत्साहित करते उसे;
ऐसे कोमल तन को कैसे दाहते!
लज्जित होते वनज देख करके जिसे!

(११)

ले कितनों के लाल मिलाते धूल में;
कितनों का सर्वस्व अग्नि मे डालते;
शूल हूल देते हो प्रायः फूल में
तव करनी पर कितने आँसू ढालते।

(१२)

जो हो, है गुण एक तुम्हारा श्रेष्ठतर,
साम्यवाद के तुम सच्चे आचार्य्य हो
एक दृष्टि रखते संसारी जीव पर
भिक्षुक हों, नृप हों, अनार्य हों, आर्य हों!

श्मशान ! *

जो किसीके वश में न कभी रहे
काल-करों ने उन्हें जकड़े कड़े !
साहिबी - सारी धरी ही रही
रहे दिव्य मकान भले कपड़े पड़े !
तूने मसान ! जहान के जीव के
तोड़ दिये अभिमान बड़े बड़े !
द्वार पै तेरे सदा, नर-सिंह की
खोपड़ी खाते शृगाल खड़े खड़े !

कितनों के लेकर लाल, राख कर डाले,
तूने बहुतों के हरे—खेत चर डाले !
अन्धेर ! अन्धेरे घर लाखों दिखलाते
सबके सब इनका हेतु तुझे बतलाते

कोई कहता—"जीवन-धन का हर्त्ता तू !"
कोई कहता—"सर्वस्व-नाश कर्त्ता तू !"
कोई तेरे तट-निकट बैठकर रोता !
पर, 'आग' छोड़ तू 'पानी' कभी न होता !

परसों जो थे नश्वर बल पर बल खाते,
तेरे घर पर उनको कुत्ते कल खाते !

क्षण भर पहले जो देख रहे थे जलसे,
उनको कर तूने राख मिलाया जल से !

जीवन(१) चरणों के निकट देखकर तेरे,
कुछ मतलब से मुर्दे हैं तुझको घेरे ।
दाता ! दे, जो. कुछ बने—जलाता क्यों है ?
जो आप मरा है उसे सताता क्यों है ?

.....

* युक्त प्रान्तीय कवि-सम्मेलन में पढ़ी गयी कविता ।
(१) जल, प्राण ।

श्मशान

(१)

इस श्मशान में आग लगादो !
भारत को मरघट न बनाओ,
कायरता—क्रन्दन न सुनाओ,
ठोकर मत खाओ, उठ जाओ,
जागो....जगको विस्मित कर दो, जगमग जीवन ज्योति जगादो !
इस श्मशान में आग लगादो !

(२)

जीवन खेल नहीं है, रण है;
रण से डरना यहाँ मरण है;
भीरु—मरण अपमान भयानक—
इसका भी कुछ तुम्हें स्मरण है ?
भीम, भीष्म की सन्तानो ! तुम भय की भीषण भीति भगादो !
इस श्मशान में आग लगादो !

(३)

आर्य-तनय दलमय, बलमय हो;
यदि तुम गरजो ? भयको भय हो;
घिर संगठित धार से बरसो—
तो पृथ्वी पर प्रकट प्रलय हो;
उठो उग्र हो उबलो, उनका उद्धतपन उन्माद उड़ा दो !
इस श्मशान में आग लगादो !

.....

लौट आ...!

आ लौट ! जल्द आ लौट !! गाँव को प्यारे....
निज हरा-भरा घर छोड़ शहर मत जा रे !

× × ×

शहरों में सत्यानाश, शोक दुख भारी।
मरभुखे भरेगा पेट न—होगी ख्वारी ।
मत भाग अभागे ठहर ! शहर मत जारे,
आ लौट ! जल्द आ लौट !! गाँव को प्यारे !

× × ×

बाहर है 'मिल' के धुआँ, आग अन्दर है,
जन्नत न मानरे ! वह दोज़ख़ का घर है !
पायेगा ख़ाक जलते हैं वहाँ अंगारे....
आ लौट ! जल्द आ लौट !! गाँव को प्यारे !

× × ×

वह शहर नहीं राणा की राजधानी है—
बिजली की शोख़ी हवा, रुका पानी है !
सब बँधे जाल में दौड़ रहे बेचारे—
आ लौट ! जल्द आ लौट !! गाँव को प्यारे !

× × ×

तन सूखा रूखा भी न मिलेगा खाना,
खाना है कारखानों में ठोकर खाना !

दिन-रात दौड़—तुझको होगा मरना रे,
आ लौट जल्द आ लौट !! गाँव को प्यारे !

× ×

रंगीन चहल या पहल नहीं तेरे है,
ये ऊँचे मंहगे, महल नहीं तेरे हैं....!
पावेगा कोठरी तंग एक कोना रे ,
आ लौट ! जल्द आ लौट !! गाँव को प्यारे !

× ×

कलकत्ता या मद्रास, न कल पावेगा,
शहरों में 'सभ्यता नहीं, नकल पावेगा,
कलदार दिखा वे मारेंगे कलपा रे—
आ लौट ! जल्द आ लौट !! गाँव को प्यारे !

× ×

शहरों में 'सिनेमा', नाटक है सट्टा है....
चोरों का साहुजी से सट्टा बट्टा है !
चेहरों में चमकना नहीं हंसी ठट्ठा है—
मीठी सलाह ले ! यह अंगूर खट्टा है ।

× ×

सुख गांव और घर में सच्चा तेरा रे !
आ लौट ! जल्द आ लौट !! गाँव को प्यारे !

.....

देखो तो-

(१)

देखो तो, वह रूखे-पर्णों की कुटी,—
बली वायु से छिन्न-भिन्नता पा रही !
असहाया है हाय ! जा रही यों लुटी,—
जिसे देखकर उर में करुणा आ रही !!

(२)

फिर देखो तो, वह बनता प्रासाद है,
पर, कैसे ? दुर्बल लोगों के रक्त से !
दीन हड्डियों पर इसकी बुनियाद है,—
निर्मातागण हैं दानवता — भक्त से !!

(३)

इधर दृष्टि दो, इस देवोपम रूप में,—
दनुजोपम है हृदय-हीनता शोभती !
मानो विष बैठा है अमृत - कूप में,
कालनेमि भीतर से बाहर से यती !!

(४)

कोमल कुसुमों की कल-कलिकाएं सभी,
हरित दलों से चुनी जा रही देखिये !

सुई चुभोई जायगी इनको अभी,
उपल हृदय पर बरबस चढ़ने के लिये !!

(५)

खाली करके निर्धन लोगों को उदर,
धनिक थैलियां अपनी-अपनी भर रहे !
देख दृष्य यह रहें लहू हम घूंट कर,
किन्तु न तुम करुणाकर ! करुणा कर रहे !!

———

बरफोक्तियाँ

(१)

बरफ=परस्त्री

(कवित्त)

काम गरमी मे दिखरात वह ज्योंही 'उग्र'
त्योंही चलि जात मन, पाइबे को ललचात।
दरस-परसमे सु-रूप-वान सीतल है,
हीतल में जाइ अनुभवी कहैं होत तात।
अधर मिलाय रस लेत ठरिजात, रद,
बुध बतरावैं छुइबे ते गात गरि जात।
प्यास न बुझात अधिकात दिनरात, बरु
बरफ हमैं तो पर-नारी सम है जनात।

(२)

बरफ-जवानी

(पद)

बरफ सी तेरी 'उग्र'! जवानी!
यदि न संभाल रखेगा तो सुन, पायेगा न निशानी।
कसकर बाँधा इसे जिन्होंने उनकी कही कहानी।—
"इसकी यहाँ चन्द-घण्टों की होती है मेहमानी।"
विषय वायु से सदा बचाना अस्तु-इसे अज्ञानी!
अन्त-नहीं तो—पछतायेगा होने पर बे-पानी —
बरफ सी तेरी 'उग्र' जवानी।

(३)

बरफ़-श्वेताङ्ग

(दोहा)

श्वेत रङ्ग वंचक सदा, याको बरफ़ प्रमान।
सीतल बनि, हीतल पइठि, तापन मारत जान॥

(४)

बरफ़-कमल

(सोरठा)

कठिन काठ सों गात, 'नहिं पराग नहिं मधुर मधु।'
यह अद्भुत जलजात, रवि विलोकि जीवन तजत।

———

चन्द्रोदय...!

—दोहा—

(१)

दूनो कर नलिनी-हृदय, सूनो कर रवि तेज !
नूनो विरह चकोर कर, प्रकट्यो चन्द्र सतेज ॥

(२)

सूर दूर भागे डरपि, नरपि छिपे घर जाइ ।
गगन शहद-शशि नखत-दल, साजि चढ़्यौ जब आई ॥

(३)

चक, चकई, विरही वनज, शशि शोभित नभ देखि ।
बिछुराहे, बिलखाहे, मूंदि मख, रहिहिं काल सम लेखि ॥

(४)

निशि, नभ नलिनी नाथ शशि, लख्यों उग्र सिर मौर ।
तम-फनिधर मनिधर चरत, मनहु खोजि कै ठौर ॥

आया वसन्त ! आयी होली !

बगिया में एक नाजुक बुलबुल
रङ्गीन जवानी में गुलाब जिसको कि लोग कहते हैं गुल

बुलबुल गुल की दीवानी क्या
तुमने भी सुनी कहानी क्या

अधखिली जवानी में गुलाब जिसको कि लोग कहते हैं गुल

बुलबुल बेकल मतवाली थी
इस डाली थी उस डाली थी
रङ्ग-भरी मुहब्बत वाली थी
वह पिये प्रेम-मद प्याली थी

बुलबुल ने चहक कर गाया क्यों
प्यारे गुलमुंह कुम्हलाया क्यों
पत्तों से बदन छिपाया क्यों
खिलता न आज शर्माया क्यों

गुल बोला—"ये कांटे मेरे
अपने सीने में जो ले रे

उस दिलवाले को मैं चाहूँ
चाहते मुझे तो बहुतेरे !"

बुलबुल ने खुशी से हो निहाल
—हिम्मत उसने की क्या कमाल—
रख दिया तराजू पर दिल के
काँटे पे कलेजे को निकाल....!

चमके तारे, चाँदनी खिली
काँटों से छिदी बुलबुल बोली—
"नवरङ्ग चुनरी मेरी रे
आया वसन्त, आयी होली !"

फिर भी प्रियतम था दूर अभी
था विरह रङ्ग भरपूर अभी
बुलबुल गुल सीने मिल न सके
काँटों से थे मजबूर अभी

गुल बोला—"बुलबुल मत घबरा
नजदीक सरकती आती जा !
तीखे काँटों पर गाती जा !
मुझको तू सींच खिलाती जा !

फिर तो काँटे उभरे हजार
पर बुलबुल ने गा-गा बहार
सीने में लिया सबको उतार
थी प्रेम-नदी में तेज धार !

जब सुबह हुई सूरज निकला
किरनों ने चमक कर क्या देखा,
काँटों में मुरझाई बुलबुल
नजदीक नया गुल खिला हुआ !*

.....

* कलाकार आस्कर वाइलड की एक कहानी का संक्षेप